परखनली शिशुः आगामी तीस साल

डॉ. सुशील जोशी

आज से तीस साल पहले दुनिया के प्रथम परखनली शिशु लुई ब्राउन का जन्म हुआ था। मतलब उसका गर्भाधान शरीर से बाहर किया गया था। इसे इनविट्रो फर्टिलाइज़ेशन यानी आई.वी.एफ. कहते हैं। करते यह हैं कि स्त्री के शरीर से अंडाणु प्राप्त करके और पुरुष से शुक्राणु प्राप्त करके उनका निषेचन शरीर से बाहर प्रयोगशाला में करवाते हैं।

लुई ब्राउन के जन्म के बाद से मानव प्रजनन में हस्तक्षेप के नए-नए आयाम उभरे हैं। हाल ही में मशहूर विज्ञान पत्रिका *नेचर* ने प्रजनन के क्षेत्र से जुड़े प्रमुख शोधकर्ताओं से पूछा कि उनके हिसाब से आने वाले तीस सालों में मानव प्रजनन में क्या कुछ घटने की संभावना है। जो जवाब मिले हैं, वे कई मामलों में अपेक्षित हैं, मगर कई मामलों में चौंकाने वाले भी हैं।

वैसे आई.वी.एफ. तथा प्रजनन की अन्य तकनीकों पर कार्य कर रहे शोधकर्ताओं के हिसाब से प्रजनन को और कार्यक्षम बनाने की दिशा में प्रयास करने की ज़रूरत है और ऐसे प्रयास चल भी रहे हैं। एक मिनट के लिए यह भूल जाइए कि प्रजनन को कार्यक्षम बनाने का सामाजिक अर्थ क्या है। यहां बात मात्र उसके चिकित्सकीय अर्थ की हो रही है।

जैसा कि सिंगापुर के इंस्टीट्यूट ऑफ बायोलॉजी के डेवर सोल्टर कहते हैं, लक्ष्य तो यही रहेगा कि जो लोग बच्चे पैदा नहीं कर सकते, उन्हें बच्चे पैदा करने में मदद की जाए और जो लोग बच्चे पैदा नहीं करना चाहते, उन्हें इससे बचाया जाए। मगर ज़्यादा चिंता इसी बात की है कि निसंतान दम्पतियों को बच्चे पैदा करने में मदद की जाए। इसमें आई.वी.एफ. ने काफी मदद की है। आई.वी.एफ. के प्रवर्तक और कैलीफोर्निया इंस्टीट्यूट फॉर रिजनरेटिव मेडिसिन के निदेशक एलन ट्राउन्सन भी मानते हैं कि आई.वी.एफ. एक महत्वपूर्ण व बड़ा कदम था और उस समय उम्मीद नहीं थी कि इसका उपयोग इस कदर फैल जाएगा। उनका अनुमान है कि आने वाले समय में आई.वी.एफ. तकनीक बहुत सस्ती हो जाएगी। इसी प्रकार से लंदन के युनिवर्सिटी कॉलेज के शिशु रोग विशेषज्ञ एलेस्टेयर सुटक्लिफ का मत है कि चिकित्सा में

प्रगति काफी हद तक मुकदमेबाज़ी से संचालित होती है। मुकदमेबाज़ी के चलते आई.वी.एफ. सुरक्षित भी होता जाएगा, समस्याएं भी कम होती जाएंगी।

मगर सोल्टर और ट्राउन्सन दोनों मानते हैं कि आई.वी.एफ. की सीमा आ चुकी है। न्यूयॉर्क के सेंटर फॉर रिप्रोडक्टिव मेडिसिन एण्ड इनफर्टिलिटी के निदेशक ज़ेव रोसेनवाक्स का भी मत है कि हम स्त्री के अंडों के संदर्भ में जीव विज्ञान की सीमा पर पहुंच चुके हैं। इसलिए अब कृत्रिम अंडों की ज़रूरत है। स्त्री के शरीर में एक उम्र तक ही अंडे का उत्पादन होता है। वैज्ञानिकों को उम्मीद है कि बहुसक्षम स्टेम कोशिकाओं से शुक्राणु और अंडाणु बनाने में सफलता मिलेगी। ये स्टेम कोशिकाएं शरीर की किसी भी कोशिका से बनाई जा सकेंगी - जैसे चमड़ी की कोशिका से प्रजनन के लिए जर्म कोशिकाएं बनाई जाएंगी। इसका मतलब यह होगा कि कोई भी व्यक्ति, चाहे उसकी उम्र कितनी भी हो, बच्चे पैदा कर सकेगा - नवजात शिशुओं और शतायु लोगों के बच्चे हो सकेंगे। खास तौर से, स्त्री के प्रजनन काल को बहुत बढ़ाया जा सकेगा। सोल्टर को लगता है कि यह 30 सालों में आसानी से हासिल हो जाएगा। इसी संभावना से जुड़ा एक मुद्दा यह भी है कि क्या हमें यह करना चाहिए कि युवावस्था में ही व्यक्तियों की कोशिकाएं इकट्ठी करके रख ली जाएं क्योंकि उम्र के साथ कोशिकाओं में जिनेटिक त्रुटियां संग्रहित होती रहती हैं।

वैसे सोल्टर का कहना है कि एक बार यह तकनीक उपलब्ध हो जाने पर पता नहीं इसका क्या उपयोग होगा। आपके पास अनगिनत शुक्राणु, अंडाणु होंगे और आप चाहे जितने मानव भ्रूण बना सकेंगे। तो ये प्रयोग के लिए उपलब्ध हो जाएंगे। आप चाहें तो भ्रूण को कल्चर में वृद्धि करने दें और उसमें मनचाहे जिनेटिक परिवर्तन करें। यानी भ्रूण एक वस्तु होगी जिसका उपयोग वस्तु की तरह किया जाएगा।

इसके साथ ही सोल्टर यह सवाल पूछते हैं कि इन भ्रूणों का पता नहीं क्या नैतिक मूल्य होगा या क्या अधिकार होंगे। उन्हें लगता है कि इस मामले में भी शायद एक बार आई.वी.एफ. के समान दर्दनाक सामाजिक बहस के दौर से गुज़रना होगा मगर अंततः यह जीवन का एक अंग बन जाएगा।

तो प्रजनन वैज्ञानिकों की नज़र से देखें तो आने वाले 30 सालों में मानव प्रजनन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम यह हो सकता है कि हम शरीर की स्टेम कोशिकाओं से शुक्राणु व अंडाणु तैयार कर पाएंगे। इनके निषेचन से शिशु उत्पन्न करना भी संभव हो जाएगा।

दूसरा महत्वपूर्ण पहलू जिनेटिक्स का सामने आता है। पिछले वर्षों में जीवों के जिनेटिक कोड को पढ़ने में अभूतपूर्व सफलता मिली है। मानव जीनोम भी पढ़ा जा चुका है। आज कई बीमारियों के जीन्स पहचाने जा चुके हैं। यह भी कुछ हद तक संभव हुआ है कि भ्रूणावस्था में जिनेटिक जांच करके पता लगाया जा सकता है कि सम्बंधित शिशु को किन जिनेटिक रोगों का खतरा है। इस सम्बंध में प्रजनन वैज्ञानिक क्या भविष्य देखते हैं?

जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के जिनेटिक्स एण्ड पब्लिक पॉलिसी सेंटर में कार्यरत सुसाना बरुच को लगता है कि आई.वी.एफ. तकनीक में फिलहाल कतिपय बीमारियों के लिए जिनेटिक परीक्षण किए जाते हैं। ये आम तौर पर एक जीन से होने वाली गड़बड़ियों से सम्बंधित होते हैं। मगर आगे चलकर जिनेटिक्स कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। रोसेनवाक्स के हिसाब से दिक्कत यह है कि फिलहाल हम यह पक्की तौर पर तय नहीं कर पाते हैं कि कोई भ्रूण सामान्य है या नहीं। इसलिए आई.वी.एफ. की सफलता दर कम होती है। उन्हें लगता है कि हमारे पास ऐसे तरीके होना चाहिए कि भ्रूण को नुकसान पहुंचाए बगैर हम उसकी सेहत जान सकें। इसके कई तरीके आज क्षितिज पर हैं। ट्राउन्सन तो मानते हैं कि आगे की प्रगति कृत्रिम गुणसूत्रों की दिशा में होगी। इनकी मदद से कई सारे रोगों (जैसे हटिंग्टन रोग) से निपटना संभव हो जाएगा। उन्हें तो लगता है कि आपके पास ऐसे गुणसूत्र होंगे जिन्हें भ्रूण में फिट किया जाएगा मगर ये सुप्त पड़े रहेंगे और उम्र बढ़ने पर इन्हें आवश्यकता पड़ने पर चालू किया जा सकेगा।

वैसे सुसाना बरुच के ख्याल में अहम सवाल यह है कि जब सुविधा होगी तो लोग किन चीज़ों का परीक्षण करवाना चाहेंगे। इस बारे में कई अटकलें लगाई गई हैं कि लोग तब मनमर्जी के बच्चे (डिज़ाइन शिशु) पैदा करना चाहेंगे। मगर सुसाना बरुच को नहीं लगता कि इस बात में बहुत दम है। उनका मत है कि दबंगता, या कद या जिसे भी आप आदर्श शिशु मानें, उसका निर्धारण किसी एक जीन से नहीं होता। हां, जिनेटिक्स का इनमें योगदान हो सकता है मगर पर्यावरण के कारकों की भी भूमिका होती है।

बहुत हुआ, तो आपके पास कई सारे भ्रूण होंगे और आपको उनमें मौजूद हर जीन की जानकारी होगी। मसलन किसी भ्रूण में ऊंचे कद का जीन होगा, तो किसी में निकट दृष्टि दोष का। वे मानती है कि 10 सालों के अंदर हमारे पास ऐसी टेक्नॉलॉजी होगी कि हम भ्रूण को हानि पहुंचाए बगैर उसकी पूरी जिनेटिक जानकारी हासिल कर पाएंगे। मगर कुल मिलाकर जानकारी बहुत पेचीदा होगी। हममें से कोई भी पूरी तरह त्रुटिरहित नहीं है और न ही हमारे भ्रूण पूरी तरह त्रुटिरहित होते हैं। बरुच को लगता है कि अंततः इतना ही होगा मां-बाप को बहुत सारी जानकारी उपलब्ध होगी मगर यह कहना मुश्किल है कि वह कितनी उपयोगी होगी और कितने पालक यह जानकारी पाना चाहेंगे।

वैसे पिछले वर्षों में जीन्स, जिनेटिक वगैरह शब्द समाज में काफी प्रचलित हुए हैं। कहीं न कहीं यह मान्यता बनी है कि हमारे सारे गुणों का निर्धारण जीन्स से होता है। इसी धारणा के तहत नोबल पुरस्कार विजेताओं के जीन्स जीन बैंकों में संग्रहित करके रखे गए हैं, ताकि कोई स्त्री नोबल विजेता की संतान पाना चाहे, तो ये शुक्राणु खरीद सके। इसी प्रकार एथलीट्स वगैरह के जीन बैंक भी अस्तित्व में आए हैं। सुसाना बरुच की टिप्पणी इस धारणा को थोड़ा लगाम देने का काम करेगी। वैसे इस संदर्भ में एक और मुद्दा है जिसकी चर्चा थोड़ी देर में करेंगे।

तो ऐसा लगता है कि आई.वी.एफ. व अन्य तकनीकों में प्रगति हमें अंडाणु और शुक्राणु से मुक्त कर देगी। वैज्ञानिकों की चिंता का अगला विषय है गर्भाशय।

ओक्लाहामा स्टेट विश्वविद्यालय के एथिक्स सेंटर के निदेशक स्कॉट गेलफैण्ड बताते हैं कि फिलहाल शिशु 22 सप्ताह के विकास के बाद ही गर्भाशय के बाहर जीवित रह पाता है। कई शोधकर्ता कोशिश कर रहे हैं कि 12 सप्ताह का भ्रूण गर्भाशय के बाहर विकसित हो सके। दूसरी ओर यह कोशिश चल रही है कि निषेचन के बाद भ्रूण को ज़्यादा से ज़्यादा दिन बाद वापिस गर्भाशय में रखा जाए। यानी गर्भाशय की ज़रूरत को कम और संभव हो, तो समाप्त करने की कोशिश चल रही है। यह संभावना रोचक और डरावनी है। वैसे कृत्रिम गर्भाशय पर काम कर रहे शोधकर्ता इसके बारे में कभी खुले आम चर्चा नहीं करते।

सोल्टर की भविष्यवाणी है कि अगले कुछ सालों में कृत्रिम प्लेसेंटा यानी आंवल का उपयोग होने लगेगा। कुल मिलाकर इसका असर यह होगा कि हम सारी अड़चनों से मुक्त हो जाएंगे। आप चाहे जितनी संतानें पैदा कीजिए। फिलहाल भ्रूण के विकास के लिए अंततः मां से उसे जोड़ने वाला आंवल ज़रूरी है। सोल्टर का मत है कि जल्दी ही आंवल को एक पोषणदायी मशीन से जोड़कर काम चलने लगेगा। वैसे भी गर्भाशय में भ्रूण स्वतंत्र रूप से तैरता रहता है। सिर्फ शुरुआती अवस्था - ब्लास्टोसिस्ट - के दौरान भ्रूण में अंगों के विकास के लिए आंवल का होना ज़रूरी है।

सुटक्लिफ के मुताबिक इस संदर्भ में चिंता का विषय यह है कि आई.वी.एफ. प्रक्रिया में भ्रूण को शुरुआती अवस्था में पोषण माध्यम में रखा जाता है। वे मानते हैं कि इस माध्यम के एपिजिनेटिक प्रभाव हो सकते हैं। एपिजिनेटिक प्रभाव यह होता है कि व्यक्ति के जीन्स की अभिव्यक्ति पर्यावरण के अनुसार बदल जाती है। जैसे वे बताते हैं कि कुछ प्रमाण हैं कि आई.वी.एफ. तकनीक से पैदा हुए बच्चों में बेकविथ वीडमैन सिंड्रोम थोड़ा ज़्यादा होता है। इसके अलावा शोध का एक विषय यह भी है कि आई.वी.एफ. से पैदा हुए व्यक्तियों की प्रजनन क्षमता

सामान्य की तुलना में कहां बैठती है। स्वयं सुटक्लिफ इस तरह का अध्ययन कर रहे हैं।

स्पेन के प्रिंस फिलिप सेंटर ऑफ इंवेस्टीगेशन के स्टोकोविक के मुताबिक हमें यह जानने की ज़रूरत है कि एक भ्रूण को गर्भावस्था में तबदील होने के लिए क्या-क्या ज़रूरी होता है। हम इस बारे में कई बातें नहीं जानते कि भ्रूण व मां के बीच क्या संवाद होता है। स्टोकोविक के मुताबिक अगले तीस सालों में तो इन सवालों के जवाब नहीं मिलने वाले।

ऊपर हमने देखा कि शुक्राणु, अंडाणु कृत्रिम रूप से तैयार करने, उनका शरीर से बाहर निषेचन करवाकर प्राप्त भ्रूण को कृत्रिम गर्भाशय में पालने की दिशा में तेज़ी से प्रगति हो रही है और कई वैज्ञानिक मानते हैं कि 30 सालों के अंदर हम ये मुकाम हासिल कर लेंगे। इससे जुड़ा हुआ मुद्दा है क्लोनिंग का। क्या सोचते हैं वैज्ञानिक इस बारे में?

क्लोनिंग का सीधा-सा अर्थ यह है कि शरीर की प्रजनन सम्बंधी कोशिकाओं (शुक्राणु या अंडाणु) के अलावा किसी अन्य कोशिका को लेकर उससे पूरे जीव का विकास किया जाए। शुक्राणु व अंडाणु में उस व्यक्ति के आधे गुणसूत्र होते हैं, जबकि अन्य कोशिकाओं में पूरे होते हैं। शुक्राणु व अंडाणु के मेल से जब बच्चा बनता है तो उसमें आधे-आधे गुणसूत्र मां और पिता से आते हैं। जब शरीर की किसी अन्य कोशिका से बच्चा बनेगा तो उसमें सारे के सारे गुणसूत्र या तो मां के होंगे या पिता के। सवाल है कि इस दृष्टि से हम कहां तक पहुंचे हैं।

स्टोकोविक का मत है कि क्लोन शिशु किसी भी दिन सामने आ सकता है क्योंकि कई देशों में नियमन काफी ढीले-ढाले हैं। कई टीमें क्लोन शिशु तैयार करने के काम में लगी है। स्टोकोविक के मुताबिक यह तकनीकी रूप से संभव है। इसमें दिक्कतें व्यावहारिक ही हैं - जैसे मानव अंडे प्राप्त करना। यदि स्टेम कोशिकाओं से अंडे बन सकें, तो यह काम आसान हो जाएगा। वैसे उनके मुताबिक एक इन्सान का क्लोन बनाने की कोई चिकित्सकीय ज़रूरत नहीं है। उनके मुताबिक मानव क्लोनिंग का कोई भविष्य नहीं है बल्कि यह बहुत नुकसान दायक तकनीक है।

क्लोनिंग में किया यह जाता है कि शरीर की किसी कोशिका से केंद्रक निकालकर, जिसमें सारे गुणसूत्र होते हैं, उसे एक केंद्रकरहित अंडाणु कोशिका में डाला जाता है। इसके बाद उसे किसी प्रकार से यह विश्वास दिलाया जाता है कि निषेचन हो चुका है ताकि वह आगे विकास करने लगे। फिर कुछ समय बाद स्त्री के गर्भाशय में रोप दिया जाता है। यानी शरीर की कोशिका के केंद्रक को यकीन दिलाया जाता है कि वह अब एक बार फिर प्रारंभिक अवस्था में है। वैसे अभी इस बात की समझ बहुत कम है कि जब कोशिका को एक बार फिर प्रारंभिक अवस्था में पहुंचाया जाता है तो उसकी आयु पर क्या असर होता है। क्लोन भेड़ डॉली की मृत्यु समय से पूर्व हुई थी।

अब ज़रा कल्पना कीजिए कि आपके पास केंद्रक स्थानांतरण की तकनीक से बना या कृत्रिम शुक्राणु और अंडाणु से बना भ्रूण है, जिसकी पूरी जिनेटिक संरचना आपको पता है, और इसे आप एक कृत्रिम गर्भाशय में रखकर बच्चा विकसित करते हैं। यह बच्चा कौन है, इसकी सामाजिक हैसियत क्या है, क्या वह एक नागरिक है, क्या उसके मानव अधिकार हैं? प्रजनन के क्षेत्र में विकास के साथ इन सवालों का सामना करना ही होगा।

वैसे किसी वजह से प्रजनन के क्षेत्र में कार्यरत वैज्ञानिकों के काम में एक बात स्पष्ट झलकती है - प्रजनन क्रिया को उसके वैयक्तिक संदर्भ से मुक्त करना और उसके हर पक्ष पर नियंत्रण करना। इस मामले में सुसाना बरुच के इन शब्दों के साथ बात को समाप्त किया जा सकता हैः ऐसे कुछ पालक ज़रूर होंगे जो अपने होने वाले बच्चे के बारे में जिनेटिक जानकारी के आधार पर फैसला करना चाहेंगे। मगर उनके सामने यह दुविधा होगी कि अपने द्वारा चुने गए गुणों के बारे में बाद में अपने बच्चे को क्या बताएंगे। ***(स्रोत फीचर्स)***